डॉ. रम्भा देवी

हिंदी - A

समय 10:30 - 11:30

बीए प्रोग्राम - द्वितीय वर्ष चतुर्थ सेमेस्टर

दिनांक 16.3.2020
17.3.2020
20.3.2020

साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है। (पंडित बालकृष्ण भट्ट)

साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' पंडित बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबन्ध है, जो सन् 1881 में प्रकाशित हुआ था। बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युग के प्रमुख रचनाकारों में गिने जाते हैं भारतेन्दु युग के साहित्यकारों को तत्कालीन औपनिवेशिक परिवेश के जनमानस में उचित बदलाव लाने का एक माध्यम निबन्ध लेखन भी लगा। साथ ही, हिन्दी साहित्य में आलोचना का जन्म भी इस काल के निबन्धों के माध्यम से होता दिखाई देता है। इस दौर में साहित्यिक परम्परा, उसमें आए बदलाव, भाषा, शब्दावली अथवा किसी साहित्यिक कृति पर विचार करने का कार्य पहले-पहल निबन्धों के माध्यम से किया गया। यह सब करते हुए ये निबन्धकार/साहित्यकार निबन्ध के माध्यम से साहित्य व भाषा के नए प्रतिमान भी गढ़ते जा रहे थे। 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' नामक निबन्ध भी इस प्रकार के निबन्धों की श्रेणी में रखा जा सकता है। जिसमें साहित्यिक परम्परा में आए बदलावों की व्याख्या की गई है।

नव जागरण काल में साहित्य के प्रति उभरे नवीन दृष्टिकोण ने यह आवश्यक कर दिया कि अतीत के गौरव के रूप में साहित्य की उन्नत परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा की जाए। बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास है' कहते हुए, इसे जनता के भावों की अभिव्यक्ति बताया है। उनका मानना था कि जैसे कोई भी मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार (शोक-संकुल, क्रोध से उद्दीप्त या चिन्ता मग्न रहता है, तो हाव-भाव भी मलिन या उदासीनता को प्रकट करने वाले होते हैं। जब वह सुख या आनन्द में डूबा रहता है तब उसकी हँसी, चुस्ती, नृत्य आदि भंगिमाएँ उसे भावों को प्रकट करती हैं। साहित्य को भावों की अभिव्यक्ति करने वाला सामाजिक क्रम मानने की दृष्टि से बालकृष्ण भट्ट कहते हैं कि किसी मनुष्य की परिस्थिति जन्य भावाभिव्यक्ति की तरह ही साहित्य समाज के भावों को प्रकट

निबन्ध - 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' पं- बालकृष्ण भट्ट

हिंदी- A बी ए. प्रोग्राम द्वितीय वर्ष चतुर्थ सेमेस्टर

करता है। उनके शब्दों में -

" मनुष्य के संबंध में इस अनुल्लंघनीय प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है; जिसमें कभी को क्रोधपूर्ण भयंकर गर्जन, कभी को प्रेम का उच्छ्वास, कभी को शोक और परितापजनित हृदयविदारी करुणा-निस्वन, कभी को वीरता गर्व से बाहुबल के दर्प से भरा हुआ सिंहनाद, कभी को भक्ति के उन्मेष से ------ 'आदि अनेक प्रकार के भावों का उद्गार देखा जाता है। साहित्य के द्वारा देश के समाज भावों की अभिव्यक्ति करना, उसे इतिहास से बेहतर उपदान बना देती है। क्योंकि साहित्य में समाज के मन को उद्दीप्त करने वाली सामाजिक घटनाओं का जिक्र तो होता ही ही है, उससे अधिक वह समाज के भावों को प्रकट करने में भी सक्षम होता है। जहाँ तक इतिहास की बात है, वह केवल बाहरी घटनाओं तक ही सीमित रहता है। इतिहास समाज के चित्त की झाँकी नहीं दिखा सकता है। इस दृष्टि से साहित्य और इतिहास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए बालकृष्ण भट्ट कहते हैं। -

" इसलिए साहित्य यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से सौंग के सब समय-समय के आभ्यन्तरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं "

बालकृष्ण भट्ट का मानना है कि किसी भी देश के मनुष्यों के हृदय को जानने का श्रेष्ठ माध्यम उसका साहित्य है। किसी समय किसी समाज के भावों को जानना हो, तो उस काल के साहित्य की 'समालोचना' से यह संभव है।

बालकृष्ण भट्ट द्वारा प्रस्तुत की गई साहित्य की उपरोक्त धारणा में दो बातें महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि साहित्य किसी भी एक निश्चित काल में समाज के चित्त का परिचय देता है, दूसरे, इस धारणा में

बी.ए. प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष -चतुर्थ सेमेस्टर, (निबन्ध - साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है, पं. बालकृष्ण भट्ट

यह भी निहित है कि एक काल की अपेक्षा दूसरे काल में चित्त की अवस्था (: भावों) में होने वाले परिवर्तन भी साहित्य के माध्यम से जाने जा सकते हैं। इस अर्थ में साहित्य 'चित्त का चित्रपट' होते हुए भी कोई स्थिर तत्व नहीं है। बल्कि यहाँ साहित्य को गतिशील माना गया है। इसलिए बालकृष्ण भट्ट साहित्य को जनसमूह के हृदय का 'विकास' मानते हैं।

बालकृष्ण भट्ट इस निबन्ध में साहित्य की परिभाषा देने मात्र तक ही सीमित नहीं रहते हैं, बल्कि वे भारतीय साहित्य की विवेचना करते हैं। वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी के तत्कालीन भाषा-साहित्य की संक्षिप्त समीक्षा के माध्यम से वे भारतीय समाज का विकास यात्रा पर एक निगाह डालते हैं। इस दौरान भट्ट जी यह भी स्पष्ट करते जाते हैं कि किस काल के साहित्य से हमें समाज के किस मनुष्य-भाव का पता चलता है। समाज में किस समय-विशेष, किस प्रकार के नैतिक गुणों का अविर्भाव हुआ। इस दृष्टि से देखें तो भट्ट जी साहित्य की अपनी धारणा को व्यवहारिक तौर पर अपने युग की आवश्यकता को पूरा करने के लिए करते हैं और आवश्यक कार्य था, अपने समाज को, स्वयं को एक राष्ट्र समूह के रूप में जानना। समाज में व्याप्त बुराईयों को चिन्हित करना।

बालकृष्ण भट्ट निबन्ध के आरम्भ में प्राचीन भारतीय साहित्य वेद की चर्चा करते है। उनके अनुसार, वेद आर्यों के समय की मनोवृत्ति के परिचायक हैं। उनके माध्यम से हमें उनके उदार व निष्कपट व्यवहार तथा भावों का पता चलता है। बालकृष्ण भट्ट मानते हैं कि वेदों की रचना के समय आर्यगण बाद के समय के लोगों से भिन्न प्रकृति के थे। उनके अनुसार, यह समय आर्यों की शैशवावस्था का था, इसलिए उनका साहित्य भी सरल एवं निष्कपट दिखाई देता है। बालकृष्ण भट्ट के शब्दों में "प्रातःकाल उदयोन्मुख सूर्य की प्रतिमा देख उनके सीधे-सादे चित्त ने बिना कुछ विशेष छानबीन किए इसे अज्ञात और अजेय शक्ति समझ लिया --- प्रभात वन्दना का साम गाने

लगे - - - - बापू की स्तुति करने लगे इत्यादि। वे ही सब ऋक् और साम की पावन ऋचाएँ हो गईं। इस समय अब के समान राजनैतिक अत्याचार कुछ न था, इसी से उनका साहित्य राजनीति की कुटिल युक्ति प्रयुक्ति से मलिन नहीं हुआ था।"

भट्ट जी मानते हैं, सामाजिक, राजनैतिक जटिलताएँ बाद में बढ़ती गई, इसलिए परस्पर सहानुभूति और एकता का तत्व भी घटता चला गया। पहले के बालकों-सा सरल व्यवहार बाद में कुटिलता में तब्दील हो गया। इस संदर्भ में वे बाद के साहित्य रामायण तथा महाभारत दोनों के समय में भी अन्तर पाते हैं। भट्ट जी दर्शाते हैं कि रामायण के समय की तुलना में महाभारत का समय अधिक राजनीतिक कुटिलता व स्वार्थ भाव से परिपूर्ण रहा है। बालकृष्ण भट्ट के के अनुसार, यह काल परिवर्तन के साथ-साथ नैतिक मूल्यों में आई गिरावट का ही परिणाम है।

बी.ए प्रोग्राम द्वितीय वर्ष चतुर्थ सेमेस्टर के सभी विद्यार्थियों से आग्रह है कि पाठ्य-सामग्री को पढ़ें।

नाम - डॉ रूबी देवी
हिन्दी विभाग
मो॰ न॰ 9718267579

अंग्रेजी शासन सन् 1857 ई. के बाद भारत को आधिकारिक रूप से अपना उपनिवेश बना लेता है। अंग्रेज न केवल भारतीय लोगों पर शासन करने को राजनीतिक रूप से सही ठहरा थे, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर उनका तर्क था कि वे असभ्यों को सभ्य बनाने के लिए ही अवतरित हुए हैं। इस प्रकार के तर्क भी प्रस्तुत किए जा रहे थे कि भारत नामक कोई देश है ही नहीं। इसका कोई इतिहास नहीं है। सर जॉन स्टैची ने कहा- "भारत के विषय में एक बात समझ लेनी आवश्यक है कि यह न कोई देश है और न कभी था- यहाँ यूरोपीय धारणाओं के अनुकूल भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक एकता है नहीं।" यूरोपियन आधारों और राष्ट्र के ढाँचे के आधार पर भारत को एक 'राष्ट्र' के रूप में मंजूरी मिलना सहज नहीं था। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा भाषिक विविधताओं के चलते एकता का कोई लक्षण बाहरी तौर पर नजर आना असंभव और अस्वाभाविक था। इसलिए यह आसानी से कहा जा सकता था कि "भारत कोई एक राजनीतिक नाम नहीं, यूरोप और अफ्रीका की तरह केवल एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह किसी देश के क्षेत्रफल या भाषा की अभिव्यक्ति नहीं करता, वरन यह कई राष्ट्रों और भाषाओं की ओर संकेत करता है।

अंग्रेजी शासकों और विद्वानों द्वारा तात्कालिक भारत को 'राष्ट्र' के रूप में न मान पाना स्वाभाविक लगता है। इस नकार के पीछे एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति वाले राष्ट्र के यूरोपीय मॉडल पर आधारित सोच थी। साथ ही, इस विस्तृत भू-भाग पर विद्यमान संस्कृतियाँ भाषाएँ विभिन्न धार्मिक पंथ भिन्न-भिन्न पहचानों एवं हित समुदायों का रूप लिए हुए थे। इस बिखराव की स्थिति में छोटे-छोटे रजवाड़ों और रियासतों की उपस्थिति और बढावा दे रही थी। औपनिवेशिक सत्ता की उपस्थिति से भारतीय समाज में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इनमें छापाखाना जैसी महत्वपूर्ण तकनीक का फैलाव, शिक्षा के संस्थानों व नवीन पाठ्यक्रमों का विकास तथा एक पढ़े-लिखे मध्यवर्ग का उदय महत्वपूर्ण घटना थी। यह वर्ग एक ओर जहाँ अंग्रेजी शक्षा के माध्यम से पश्चिमी समाज एवं सभ्यता की जानकारी रखता था, वहीं उसकी तुलना भारतीय समाज से करना उसके अस्तित्व का अहम अंग बन गया था। इस प्रक्रिया में भौतिक एवं तकनीकी स्तर पर भारतीय समाज की तुलना में अंग्रेजी पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के

आकर्षण से यह मध्यवर्ग अछूता नहीं था। औपनिवेशिक सत्ता द्वारा प्रदत 'आधुनिक शिक्षा' के संसर्ग से उत्पन्न तत्कालीन शिक्षित मानस अब 'पिछड़े' भारतीय समाज की 'कमियों' अथवा 'बुराइयों' आसानी से देख सकता था। भारतीय समाज में आत्मचेतना का यह प्रथम दौर समाज-सुधार आंदोलनों या धर्म सुधार आंदोलनों का रहा। आरम्भिक आंदोलन अपने उद्देश्य को पाने के लिए कभी-कभार औपनिवेशिक सत्ता के हस्तक्षेप की उम्मीद करते थे। जब कभी किसी नए कानून बनाने की आवश्यकता महसूस हुई, तो सुधारकों ने इसकी माँग की। (उदाहरण के लिए- सती प्रथा आदि)| इस प्रकार, यह नवजागृत वर्ग भारतीय समाज में ब्रिटिश सत्ता की उपस्थिति को लाभदायक भी मान बैठता था, ताकि इससे भारतीय समाज कानूनी अव्यवस्था, अशिक्षा, अंधविश्वास और निरंकुशता से बचा रह सके।

विषय प्रतिपादन :

भारतेन्दु युग के साहित्यकार अपने समय के समाज के प्रति जागरूक थे। इसलिए ब्रिटिश शासन की उपस्थिति और भारतीय समाज की दशा पर उनकी लेखनी चली। यह सही है कि सन् 1857 ई. के सशस्त्र विद्रोह के पश्चात के इस दौर में पूर्ण आजादी या पूर्ण स्वराज्य जैसे स्वर नहीं सुनाई दे रहे थे। किन्तु इस समय के विचारक व जागरूक लेखक एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे और वह था एक 'राष्ट्र' के बतौर 'आत्म' को पहचानना। भारत की वर्तमान दशा के कारणों की पहचान, अतीत के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा, सामाजिक कुरीतियों तथा समाज की एकता में बाधक तत्वों पर प्रहार करना आदि। इस युग के भारतीय साहित्य का एक प्रमुख लक्षण है। हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण का यह कार्य भारतेन्दु की अगुवाई में संपन्न हुआ, जिसमें प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्री नारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि अनेक साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया। 'स्वत्व' की पहचान करने का कार्य भाषा साहित्य एवं समाज की सशक्त परम्पराओं को पहचानने और उन्हें एक राष्ट्रीय गौरव के रूप में सामने लाने के प्रयासों पर आधारित था। समाज में व्याप्त बुराइयों व कमजोरी पैदा करने वाले तत्वों पर प्रहार करने की यह प्रक्रिया साहित्य को भी अपना लक्ष्य बनाने लगी। साहित्य का देखने व समझने के प्रति भी लेखकों के नजरिये में पहले की तुलना में क्रांतिकारी बदलाव आया। अब साहित्य समाज के परिष्कार का माध्यम भी बना और लक्ष्य भी। इसका प्रमुख कारण था नवीन गद्य विधाओं (निबन्ध आत्मकथा, यात्रा-संस्करण, समालोचना आदि) की पाठकों को प्रभावित कर सकने की क्षमता को पहचानना।

• साहित्य की सामाजिकता का प्रश्न

(क) भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु युग से ही साहित्य और उसके समाज से संबंधों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति का आरंभ होता दिखाई देता है। इसका कारण रचनाशीलता को समाज के हित में एक उपकरण बनाने की चेष्टा रहा है। अब राष्ट्रीय चेतना के प्रसार सशक्त राष्ट्र के लिए आवश्यक समाज-सुधार और समाज संगठन हेतु साहित्य की सामाजिक भूमिका पर चिंतन होना आरंभ हुआ। भारतेन्दु युग की रचनाओं में साहित्य और समाज के संबंधों पर चिंतन करना आरंभ हुआ। भारतेन्दु युग की रचनाओं में साहित्य और समाज के संबंधों पर विचार एक अलग विषय या शास्त्र के रूप में भले ही न दिखाई दे, किन्तु साहित्यकारों की चिंता का मूल केन्द्र वही है। यही कारण है कि स्वयं भारतेन्दु व उनके समकालीन अनेक रचनाकारों द्वारा रचित साहित्य का मूल स्वर समाजोन्मुख ही रहा है। अपनी युग चिंता के दबाव में साहित्य को नए सामाजिक सरोकारों से जोड़ते हुए भारतेन्दु ने कहा कि आजादी और गुलामी के बीच न साहित्य तटस्थ रह सकता है, ना साहित्यकार। उनका मानना था कि हमें न सिर्फ नई चेतना के वाहक साहित्य की रचना करनी है, बल्कि उस पर अमल भी करना है। साहित्य से नई चेतना के वाहक बनने की उम्मीद तब तक नहीं की

जा सकती, जब तक साहित्यकार स्वयं उसे न अपना ले। साहित्यकारों से उस पर अमल करने आह्वान सही मायनों में कथनी व करनी के भेद को दूर करने की चेष्टा थी।

भारतेन्दु युग में एक महत्वपूर्ण तथा रेखांकनीय तथ्य यह है कि उस समय के साहित्यकार केवल साहित्य रचना से ही नहीं जुड़े थे, बल्कि उनमें से अधिकांश विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन तथा विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक संगठनों से भी जुड़े थे। नवीन चेतना का प्रसार केवल साहित्यकारों तक सीमित न रहा। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण साहित्य के उद्देश्य को 'मनोरंजन मात्र' से विस्तृत कर उसे अन्य सामाजिक हितों की पूर्ति तक लाना था। भारतेन्दु युग में एक अर्थ में साहित्य का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा देना हो जाता है। भारतेन्दु ने अपने निबंध 'नाटक' में नाटक के उद्देश्य की चर्चा करते हुए लिखा "आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटक में उद्देश्यफल निकालना बहुत आवश्यक है। यह न होने सभ्य शिष्टगण ग्रंथ का आदर नहीं करते अर्थात् नाटक पढ़ने व देखने से कोई शिक्षा मिले, जैसे सत्य हरिश्चन्द्र देखने से आर्य जाति की सत्य प्रतिज्ञा, नीलदेवी से देश-स्नेह इत्यादि की शिक्षा मिलती है।"

साहित्य के माध्यम से शिक्षा देना साहित्य के समाज के संबंध की स्वीकृति ही है। साहित्य की सामाजिकता का आग्रह भारतेन्दु युग के साहित्यकारों के लेखन का एक केन्द्रीय तत्व रहा है। इस प्रक्रिया में समाज के सर्वसाधारण वर्ग की चिंता साहित्य की मुख्य धारा में उपस्थित होती दिखाई देती है। पं. प्रतापनारायण मिश्र ने साहित्य से लोकहित के तत्व की खोज करते हुए कई पुस्तकों की समीक्षाएँ की थी। 15 मार्च 1892 के 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका में 'प्राप्ति स्वीकार' के अंतर्गत पं. चतुर्भुज मिश्र कृत 'आल्हा रामायण सुन्दर कांड' की समालोचना करते हुए मिश्र जी ने लिखा- "पंडित जी को चाहिए कि इस छंद तथा भाषा में वह विषय लिखें, जो सर्वसाधारण के लिए सांसारिक उपकार का हेतु हो, रामचरित्र को इस रूप में लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

साहित्य को 'सांसारिक उपकार का हेतु' मानना साहित्य की पारलौकिक अनुभूति या 'स्वान्तः सुखाय' मानने की समझ को दरकिनार कर देना था। जब साहित्य की सामाजिक उपदेयता या भूमिका पर ध्यान दिया जा रहा हो, तब यह स्वाभाविक ही था कि साहित्य की नवीन परिभाषा की जाए। साहित्य के नए प्रतिमान बनाए जाएं। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य की नवीन परिभाषा करते हुए कहा कि "साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है"। यह विवेचना निबन्ध का शीर्षक मात्र नहीं, बल्कि साहित्य के प्रति उभरे तत्कालीन नवीन दृष्टिकोण पर आधारित उसकी एक परिभाषा भी है। इस निबंन्ध में बालकृष्ण भट्ट ने साहित्यिक परम्परा में युगानुस्वरूप हुए परिवर्तनों की व्याख्या और सामाजिक परिवर्तनों से उसने संबंधों पर विचार किया है। साहित्य और समाज के परस्पर संबंधों को व्याख्यायित करते हुए भट्ट जी कहते हैं कि समाज में होने वाले परिवर्तन व उसके भावों को साहित्य के माध्यम से जाना जा सकता है। उनके शब्दों में- "जो जाति जिस समय, जिन भावों से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।"

इस प्रकार, साहित्य को एक समाज विशेष के द्वारा एक विशिष्ट समय के भावों की अभिव्यंजना करने वाले तत्व के रूप में देखा गया। 'जनसमूह के हृदय का विकास' को साहित्य के स्वरूप ही नहीं, बल्कि साहित्य संबंधी समझ में भी परिवर्तन की संभावना को व्यक्त करता है। बालकृष्ण भट्ट की यह मान्यता समय और समाज से साहित्य के संबंधों को दर्शाती है। इसीलिए उन्होंने इतिहास और साहित्य का भेद करते हुए कहा -

"इसलिए साहित्य यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी भी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश को जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यंतरिक भाव हम में परिस्फुट हो सकते हैं।" बालकृष्ण भट्ट साहित्य को समाज से जोड़ते हुए उसके भावात्मक पक्ष पर अधिक बल देते हैं। लेकिन इस प्रक्रिया में समाज और साहित्य के परस्पर संबंध के आधार को भट्ट जी

तनिक भी नहीं भूलते। बल्कि आगे उन्होंने रामायण और महाभारत के काल की परिवर्तित सामाजिक स्थितियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हुए लिखा -

"रामायण के समय से भारत के समय में लोगों के हृदयगत भाव में कितना अंतर हो गया था कि रामायण में दो प्रतिद्वंछी भाई इस बात पर विवाद कर रहे थे कि यह समस्त राज्य और राज्य-सिंहासन हमारा नहीं है, यह सब तुम्हारे ही हाथ में रहे। वहीं महाभारत में दो दादाजाद भाई इस बात के लिए कलह करने पर सन्नद्ध हुए कि जितने में सुई का अग्रभाग ढक जाए उतनी पृथ्वी भी बिना युद्ध के हम न देंगे।"